

डॉ० सुबीर गोकर्न, निदेशक, अनुसंधान, ब्रूकिंग्स इंडिया, पूर्व डिप्टी गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक

कृषि जैसे क्षेत्र पर विचार करने के लिए बजट बहुत छोटी वस्तु है। हम एक कदम पीछे लेते हुए देखते हैं इसमें सबसे अधिक भागीदार कौन हैं और उनका क्या दृष्टिकोण होना चाहिए, जिनका कृषि पर जीवन टिका हुआ है और उनके क्या हित हो सकते हैं? सबसे पहले मैं उपभोक्ता की बात करूँगा क्योंकि वह प्रमुख भागीदार है। उपभोक्ता कृषि से क्या चाहता है, सबसे पहले यही देखना है, वह खाने की किस्मों और पौष्टिक तत्वों की उपलब्धता चाहता है, जो कृषि क्षेत्र से ही मिलती हैं। यह तत्व प्रत्येक व्यक्ति की खर्चने की सीमा और उस समय में चल रहे मूल्यों पर निर्भर होती है। भारतीय कृषि की सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या खाद्य मुद्रास्फीति की समस्या है, जिसके बारे में प्रत्येक व्यक्ति कई वर्षों से बातें करता आ रहा है।

वस्तुओं का सही मूल्यांकन करने के लिए हमें पिछले 7 वर्ष की खाद्य मुद्रास्फीति पर नजर डालनी होगी जो लगभग 10 प्रतिशत रही है। इसकी दर बढ़ती जा रही है लेकिन इस पर विचार करने वाले और नीतियां बनाने वाले अलग-अलग होते हैं। लगभग 6-7 वर्ष पहले पूरे विश्व में अनाज का संकट था और वर्ष 2007-08 तक पूरे विश्व में खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ी थी लेकिन 2008 के मध्य से पूरे विश्व में यह कम हो गई और धीरे-धीरे अनाज के मूल्य कम होने लगे। लेकिन भारत में मुद्रास्फीति की समस्या जारी रही। वर्ष 2009 में बहुत कम वर्षा हुई और इस कारण भी मुद्रास्फीति बढ़ी, किंतु खाद्य मुद्रास्फीति के पहले चरण में दालों के मूल्यों का प्रमुख भाग था, लेकिन मेरा मानना है कि इसे प्रोटीन का नाम दिया जाए। तब प्रोटीन को एक तरफ कर दिया गया लेकिन अभी भी दूध का प्रमुख भाग है, किंतु जब हर तरफ प्रोटीन की मात्रा कम होने लगी तब हमें सब्जियां मिलने लगीं। वर्ष 2011-12 के दौरान सब्जियों का प्रमुख योगदान रहा और अभी भी इनका काफी योगदान है। आश्चर्यजनक रूप से वर्ष 2012 के मध्य से चावल एक बड़ी भूमिका निभाने के लिए उभरा है। इस कारण पिछले कुछ वर्षों में चावल के भाव 16-17 प्रतिशत वार्षिक के दर से बढ़ रहे हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न कारण अपनी भूमिका निभाते हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि खाद्य मुद्रास्फीति अधिक ही रही, जो उपभोक्ताओं के हित में नहीं है।

अब मैं कुछ ऐतिहासिक दृष्टिकोण की बात करूँगा। आप किसी देश के अनुभव पर ध्यान देंगे तो पाएंगे कि किसी भी देश में इतनी दर पर खाद्य मुद्रास्फीति नहीं है। ईस्ट एशिया इसका अच्छा उदाहरण है, जहां पर खाद्य मुद्रास्फीति बढ़ती थी किंतु अब वहां यह स्थिर है। अतः आपको इस समस्या का निवारण करने के लिए कारगर उपाय करने होंगे। हमारे देश जैसी अर्थव्यवस्था के ढांचे में खाद्य मूल्यों में तेजी से वृद्धि होती है और उन्हें रोकना आसान नहीं होता। इस प्रकार खाद्य वस्तुओं के मूल्य स्थिर रखना नीतियों का महत्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए।

उपभोक्ता के दृष्टिकोण से उपलब्धता, खरीदने की क्षमता और विविध वस्तुओं की उपलब्धता, यह तर्कसंगत आवश्यकताएँ हैं। इन वास्तविक आवश्यकताओं से उपभोक्ताओं को क्यों वंचित रखा जाए? उत्पादकों के दृष्टिकोण से हमें उत्पादन का महत्व जानना होगा जिसका सीधा अर्थ है कि उनकी आय और रहन-सहन। हमें सुरक्षा पर भी ध्यान देना होगा क्योंकि जोखिम प्रबंधन पूरी तरह संवेदनशील है, इसलिए यदि किसी उत्पादक को कृषि क्षेत्र में बनाए रखने के लिए प्रेरित करना है तो निर्धारित समय में आप उसकी आय में कितनी वृद्धि का अनुमान लगाते हो क्योंकि भूमि की उपजाऊ शक्ति की भी सीमाएँ हैं। इसके लिए भूमि उत्पादन बढ़ाने के लिए हमें विभिन्न प्रकार के उपकरण चाहिए, लेकिन इस कारण उत्पादन में कमी भी आ जाती है, विशेषकर खाद्य की अधिक उपयोगिता या इसका दुरुपयोग करना।

दोबारा स्थिरता पर आते हुए मैं कहना चाहूँगा कि मूल्य नियंत्रण करना लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है तो आय या सामान्य आदमी का जीवनयापन स्थाई रहे। मूल्यों की भूमिका हो सकती है लेकिन जरूरी नहीं कि मूल्यों से ही जीवनयापन में सुधार हो। सरकार के दृष्टिकोण से, जो तीसरा भागीदार है, इसका उद्देश्य खाद्य मुद्रास्फीति पर नियंत्रण रखना और यह सुनिश्चित करना है कि समाज के सभी वर्गों के लोगों तक अनाज पहुंचे, जो कि नहीं पहुंचता है और इस अनाज में समान पौष्टिक तत्व हों ताकि अधिकतम लोग इनका उपभोग कर सकें, हालांकि इनकी खरीद करना एक समस्या है। अंतिम लक्ष्य है खाद्य सुरक्षा को कल्याण लक्ष्यों के साथ मिलाना जैसे स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा, किंतु आप इन सभी को एक समेकित कल्याण फ्रेमवर्क में कैसे ला सकते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त वो लक्ष्य हैं जिनका हमें मूल्यांकन करना है ना कि बजट, न ही कोई नीति संबंधी ब्यान या नीति का फ्रेमवर्क। उपभोक्ता की दोबारा बात करते हुए पूछना चाहता हूँ कि उनपर मूल्यों का इतना बड़ा दबाव क्यों बन रहा है और यह दबाव कहां से आता है। मेरा मानना है कि यदि हम पिछले कुछ वर्षों में देखें तो जैसे हम 40 वर्ष पहले खाद्य सुरक्षा के विषय पर विचार करते थे, वैसे ही अब भी कृषि क्षेत्र पर विचार करते हैं, कहना यह है कि अगले संकट के बीज हम पहले के समाधान में ही बौ देते हैं। हमने 1960 और 1970 के दशक में खाद्य संकट का सामना करने के लिए अनाज अर्थव्यवस्था तैयार की। हमने अनाज का उत्पादन बढ़ाने के लिए भरसक प्रयास किये और ऐपीएमसी अधिनियम बनाया तथा भारतीय खाद्य निगम की स्थापना की, खरीद और भंडारण के कार्य वैसे ही चलते रहे इससे कोई फर्क नहीं पड़ा कि अब उपभोक्ता की आवश्यकताएँ बदल चुकी हैं, उनकी पसंद और खरीद क्षमता में सुधार हुआ है तथा सबसे महत्वपूर्ण पिछले 10 वर्षों में उनकी खरीद शक्ति भी बढ़ी है। इस प्रकार यदि हम अनाज का उस मात्रा से अधिक उत्पादन करते रहेंगे जितनी आवश्यकता है, तो हमें अनाज के लिए संसाधन जुटाना जारी रखना होगा जबकि उपभोक्ता और ग्राहकों को अलग वस्तुओं की आवश्यकता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हम इसी प्रकार से खरीदें करते रहे तो लगेगा कि सरकार ही उपभोक्ता बन चुकी है।

लगभग एक दशक पहले डॉ० अभिजीत सेन ने अपनी लोकप्रिय रिपोर्ट में अनुमान लगाया था कि देश में लगभग 22 मिलियन टन भंडार रखने की आवश्यकता है, 14 मिलियन टन चावल और 8 मिलियन टन गेहूं। अब तक यह मात्रा कुछ बढ़ गई होगी, किंतु इतनी नहीं कि 60-70 मिलियन टन हो गई हो जैसा कि हम पिछले वर्षों से करते आ रहे हैं। यही कारण है कि हमें प्रत्येक महीने में किसी न किसी टी.वी. चैनल पर यह कहानी देखने को मिल जाती है कि खुले में रखा हुआ कितना अनाज सड़ रहा है क्योंकि हमारे पास भंडारण की अनुमानित क्षमता 20-25 मिलियन टन की ही है। बकाया माल का इसमें कोई योगदान नहीं है। यह एक अवसरवादिता है क्योंकि हमें अनाज का उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन देते रहना है।

हम इस रणनीति का कैसे सामना करें ? हम बातें तो नई तकनीक और भूमि परीक्षण की करते हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि अनाज उत्पादन को प्रोत्साहित करने की नीति में परिवर्तन करना होगा। इसमें परिवर्तन करने में कठिनाई यह है कि हम दो चीजों के बीच में फंसे हुए हैं। हमें एक ही तीर से दो शिकार नहीं करने चाहिए क्योंकि ऐसा कभी नहीं होता है, विशेषकर आर्थिक नीतियों में यह उचित नहीं है। किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह एक सत्यापित नियम है कि आपके पास कटिबद्धता होनी चाहिए। हम अनाज उपलब्ध कराने और किसानों के रहन सहन में सुधार करने की दोनों समस्याओं को खरीद के माध्यम से ही सुलझाना चाहते हैं। कहीं न कहीं यह दोनों समेकित हैं और सबसे अधिक महत्वपूर्ण हमें नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है और जानना होगा कि इन दोनों को अलग-अलग कैसे सुलझाया जाए। क्या हम एक ही उपकरण के उपयोग से खाद्य सुरक्षा प्राप्त कर सकते हैं और क्या हम किसानों की आजीविका को सुरक्षित रखने के लिए एक

उपकरण का उपयोग कर सकते हैं। मेरा मानना है कि ऐसा हो सकता है और इसी क्षेत्र में नीतियां तैयार करने की आवश्यकता है।

किंतु, अनाज के विषय में प्रमुख रूप से विचार करते हुए हमें गारंटी की नीति को अलग करना होगा जिसके अंतर्गत खरीदें की जाती हैं। यह दोहरी गारंटी इस बात की होती है कि गारंटी दर पर हम सब कुछ खरीदेंगे। किंतु, हम दोनों कार्य एक साथ नहीं कर सकते हैं। हमें एक खरीद पद्धति ऐसी बनानी चाहिए जो कारगर सिद्ध हो, चाहे हम मूल्य या मात्रा कि गारंटी दें। यदि हम दोनों की गारंटी लेते हैं तो हम उसी स्थिति का सामना करते रहेंगे जैसी समस्या का आज सामना कर रहे हैं। यह देखने की आवश्यकता है कि इससे कैसे विकार उत्पन्न होते हैं। सार्वजनिक खरीद प्रणाली के अंतर्गत सबसे ज्यादा गेहूं की खरीद मध्य-प्रदेश से की जा रही है। ऐसा क्यों ? राज्य सरकार इसके लिए गर्व महसूस करती है क्योंकि इसने एक लक्ष्य निर्धारित किया और उसकी प्राप्ति भी की। किंतु राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखें तो यह अच्छा परिणाम नहीं है क्योंकि राज्य सरकार के कारण अधिक गेहूं उगाने के लिए किसानों को प्रोत्साहित करने के लिए अतिरिक्त न्यूनतम समर्थन मूल्य देना पड़ता है। मध्य-प्रदेश में बहुत अच्छी गुणवत्ता का गेहूं होता है किंतु ऐसा गेहूं प्रत्येक स्थान पर नहीं उगाया जा सकता। गेहूं के कारण खाद्य मूल्यों में अधिक वृद्धि नहीं होती है किंतु अधिक प्रोत्साहन देने से रूकावट यह आ जाती है कि उपभोक्ता को वह चीज अधिक मात्रा में मिल रही है जिसकी मांग कम है।

वास्तव में यह आधी कहानी है। हम हमेशा अधिक अनाज उगाने के लिए प्रोत्साहित न करने की बात तो करते हैं किंतु ऐसा कोई सिस्टम नहीं बना पाते जिसके अंतर्गत दालों आदि जैसी अन्य जिंसों की पैदावार बढ़ सके। पिछले कुछ वर्षों में पशुओं का चारा एक बड़ी समस्या है। पशु चारे के मूल्य बढ़ने से दूध के मूल्य भी तेजी से बढ़ते हैं जिस कारण हम अधिक भूमि पर पशु चारा उगाकर इस समस्या का समाधान कर सकते हैं। लेकिन क्या पशु चारा उगाने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। यह एक चुनौती है क्योंकि चावल और गेहूं दो ऐसी कृषि जिंसों हैं जिन्हें अधिक समय तक गोदामों में रखा जा सकता है जबकि अन्य जिंसों को नहीं। इसलिए आप एक ही खरीद पद्धति का उपयोग अन्य जिंसों की खरीद और उन्हें गोदामों में रखने के लिए नहीं कर सकते न ही प्रोत्साहन को कम कर सकते हैं।

इस विषय में तीन पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। हम किसी भी ऐसी जिंस का उत्पादन करें जिसे प्रौसेस किए बिना कच्चे रूप में ही गोदामों में रख सकें। इसका पता लगाना होगा। हम ऐसी वस्तुओं के बारे में पता कर सकते हैं जिन्हें थोड़ा प्रौसेस करके गोदामों में रखा जा सकता है, जैसे सस्ता प्याज खरीदकर कुछ दिनों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है और उपभोक्ता को राहत मिल सकती है। इसकी तकनीक उपलब्ध है और इसका उपयोग किया जाना चाहिए। तीसरा पहलू वित्तीय बाजार है। किसी भी जिंस के मूल्यों पर नियंत्रण रखने के लिए धन खर्चने की भूमिका महत्वपूर्ण होती है किंतु इसके लिए निर्णय लेने के लिए जनमत बनाने में कठिनाई आती है। यह अध्याय बंद नहीं हुआ है क्योंकि कई बार परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिनमें यह कामयाब होता है और कई बार कामयाब नहीं होता है। हमें ऐसी परिस्थितियां बनानी चाहिए की यह कामयाब हो और इसका उपयोग अन्य जिंसों के मूल्य स्थिर रखने के लिए भी किया जा सके। बजट में मूल्य स्थिर रखने के लिए फंड आबंटित करना महत्वपूर्ण शुरुआत है, किंतु इसे कारगर ढंग से डिजाईन और लागू करने की आवश्यकता है क्योंकि अभी तक हमें यह मालूम नहीं है कि यह किस प्रकार से कार्य करेगा।

खाद्य सुरक्षा के परिपेक्ष्य में सरकार की भूमिका और इसे वित्तीय जीवनयापन सुरक्षा से लिंक करने की दिशा में लविश ने एक बहुत महत्वपूर्ण बात कही है कि अब कृषि और गांव एक से नहीं रह गए हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि से आधी से भी अधिक कम है और यह पिछले 10 – 12 वर्षों से इसी पद्धति पर चल रही है और ग्रामीण

अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका कम होती जा रही है। इस प्रकार अब बहुत से अधिक उपाय उपलब्ध हैं जिनपर अमल करके जीवनयापन की सुरक्षा मिल सकती है। इसका सबसे महत्वपूर्ण रास्ता है कि गांव में आधाभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। कृषि से बाहर आजीविका कमाने के अवसर देने से कृषि से संबंधित मिलने वाली आय की सुरक्षा की राशि में कमी होती जा रही है। इस संबंध में एक उदाहरण दिया जा सकता है, दिल्ली से बाहर मुख्य राजमार्गों पर चार लेन की सड़कें बनाने से प्रभाव दिख रहा है। मैंने पिछले 10-12 वर्षों से कई बार आगरा और जयपुर हाईवे का उपयोग किया है और प्रत्येक वर्ष देखता हूँ कि इन हाईवे पर जीवनयापन में मूलभूत परिवर्तन आ रहे हैं। इसका साधारण सा उत्तर है कि अच्छे रोड़ बनने से दूरी कम होती है और कोई भी व्यक्ति कम समय में आ-जाकर अपनी आजीविका बढ़ा सकता है। पहले आपकी आधे से एक घंटे में पांच किलोमीटर की दूरी पूरी होती थी और अब इसी समय में आप 15-20 किलोमीटर की दूरी तय करते हैं। इस कारण आस-पास उद्योगों का झुंड बढ़ता जा रहा है जिससे उत्पादन बढ़ता है, कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में नौकरी के अवसर बढ़े हैं और इस कारण गांववालों की आय अर्जित करने के विभिन्न साधन बनते जा रहे हैं।

यह आय सुनिश्चित करने का एक रास्ता है किंतु आप किसी और उपाय से इसका विकल्प भी निकाल सकते हैं और यह उपाय है एक सैफटी नैट बनाया जाए जो मूल्य नियंत्रण निधी में से बनाया जाए, भुगतान करने के लिए ट्रांसफर पद्धति बनाकर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया जा सकता है। आय के अवसरों को उपलब्ध कराने के लिए कई तरीके हो सकते हैं, किंतु इसके लिए सैफटी नैट जरूरी है। सरकार की ओर से पौष्टिकता प्रमुख है लेकिन दुर्भाग्यवश खाद्य सुरक्षा की सीमा मोटे अनाज तक ही सीमित है और अनाज सुरक्षा देकर इसे पूरा नहीं किया जा सकता। खाद्य सुरक्षा बिल के महत्व पर कई बार वाद-विवाद हो चुका है और बहुत से ऐसे लोग हैं जो इस मूल-फ्रेमवर्क का विरोध करते आ रहे हैं। पौष्टिकता और खाद्य सुरक्षा दोनों अलग-अलग बातें हैं। आप पौष्टिकता की सुरक्षा की गारंटी नहीं देते हैं जबकि यह एक कल्याण कार्य होना चाहिये और आप अनाज की उपलब्धता बढ़ाकर ऐसा कर रहे हैं जबकि अनाज में सम्पूर्ण पौष्टिकता नहीं होती है।

वर्ष 1960 में खाद्य सुरक्षा की रूकावट के पहले चरण को हमने तब पार किया जब हमने कमी के स्थान पर उपलब्धता का लक्ष्य रखा और इसमें अनाज ने केंद्रीय भूमिका निभाई। किंतु, अब हम अनाज प्रभुत्व से अलग होकर ऐसे क्षेत्र में जाना चाहते हैं जहां पर अधिक प्रोटीन और सब्जियां उपलब्ध हों तथा पौष्टिकता के अन्य साधन जुटा सकें। हमें न्यूनतम पौष्टिकता उपलब्ध कराने के लिए कुछ संसाधित वस्तुओं का पता लगाना चाहिये। यह ऐसी चुनौतियां हैं जिनका समाधान करना होगा और जब हम व्यापक रूप में पौष्टिकता की सुरक्षा की बात करते हैं तो हमें केवल अनाज पर दृढ़ रहने के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी ध्यान देना होगा।

तो बजट ने किन समस्याओं का समाधान किया ? बजट ऐसा स्थान नहीं है जहां पर कृषि रणनीति का उल्लेख किया जा सके। इसमें प्रमुख भूमिका कृषि मंत्रालय की है और मुझे आशा है कि वहां से कुछ अच्छा निकलेगा लेकिन फिर भी तकनीक, भूमि उर्वरता बढ़ाना तथा मूल्य स्थिर रखने की नीति आरंभ करने जैसे कदम सराहनीय हैं। एक राष्ट्रीय मार्केट बनाने की घोषणा करना तो ठीक है किंतु इसे बनाने में अत्यधिक कठिनाईयां आएंगी लेकिन फिर भी सोच अच्छी है। वर्ष 2011 के बजट में प्रोटीन क्रांति के संबंध में प्रोटीन सप्लीमेंट पर एक राष्ट्रीय मिशन की घोषणा की गई थी लेकिन जब मैं उस समय सरकार में था, तब तक मुझे इस मिशन की शुरुआत दूर-दूर तक नजर नहीं आई, न ही पता चला कि इसकी क्या स्थिति है। वर्ष 2012 में भी डेरी मिशन के लिए बड़ी राशि आबंटित की गई लेकिन अभी तक यह भी नहीं मालूम की इस दिशा में कुछ कार्य हो रहा है या नहीं।

परिस्थितियों के महत्व और संवेदनशीलता पर विचार करते हुए सरकार को यह लोगों तक पहुंचाना चाहिए कि जिन योजनाओं की शुरुआत की गई है उन्हें लागू भी किया जा रहा है तथा उसके कैसे परिणाम आ रहे हैं। केवल यही एक ऐसा रास्ता है जिससे उठाए गए कदमों के प्रति आशा जागेगी और जो कार्य किये जा रहे हैं उन्हें बताना तथा प्राप्त उपलब्धियों को भी बताना। योजनाओं में पैसा लगा देना और उसके पश्चात चुप हो जाना, यह रणनीति अपनाकर किसी भी नीति की सफलता का पता नहीं लग पाएगा और मुझे आशा है कि घोषित योजनाओं को वास्तव में लागू भी किया जाएगा।

संपादकीय

संसद में भारतीय जनता पार्टी को स्पष्ट बहुमत मिलने से वह अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी निर्णय करने के लिए आजाद है लेकिन अपने निर्णय के परिणामों की जिम्मेवारी से वह बच नहीं सकती। भारतीय युवा आशा और अवसर रहित वातावरण में अपना भविष्य आरंभ करते हैं और उनके पास एक ऐसा विकल्प होना चाहिए कि वह सरकार के टुकड़ों या मिलने वाले भत्ते को विकल्प न समझें और उन्हें भारतीय राजनीति का लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए।

एक चिंताजनक बात यह है कि नीति निर्माता कौन से लोग होंगे। यह महत्वपूर्ण है कि प्रधानमंत्री को टेलिविजन पर कक्षाएं लेने से बचना चाहिए और उस वार्तालाप में भाग लेने वालों से भी बचना चाहिए क्योंकि वे समाज के बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। प्रधानमंत्री को औद्योगिक संघों द्वारा की जा रही अति प्रशंसा से भी सतर्क रहना चाहिए क्योंकि मुझे याद नहीं है कि इस वर्ग ने बजट भाषण के दौरान कभी विरोध प्रकट किया हो। वे तब ही कमियां निकालते हैं जब सरकार बदलना नजर आने लगता है। केवल वे भारतीय, जो न तो टेलीविजन पर बजट भाषण देखते हैं, स्टॉक मार्केट में पैसा नहीं लगाते और न ही टैक्स देते हैं, वे लोग ही पांच वर्षों के बाद निर्णायक भूमिका निभाते हैं। प्रश्न यह है कि इस प्रकार से चलती आ रही परंपरा का क्या कोई अंत होगा ?

विश्व व्यापार संगठन के दौरान उत्पादन और सहायता की गणना रूप्यों में की जाती है जबकि वर्ष 1990 से रूपये का मूल्य 300 प्रतिशत कम हो चुका है। यदि इसे डॉलर में गिना जाए तो विश्व व्यापार संगठन में भारत इस पर विराम लगाने की नहीं सोचेगा।

आश्चर्यजनक, भारत ने अभी तक पिछले 10 वर्षों में अपने उत्पादन और आर्थिक सहायता को विश्व व्यापार संगठन में अधिसूचित नहीं किया है। इस संगठन की होने वाले लगभग सभी अधिवेशनों में पिछले 2 दशकों से भारत के कुछ छोटे अधिकारी ही प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि अन्य देशों के उच्च अधिकारी इसमें भाग लेते हैं।

एक तरफ तो खाद्य सुरक्षा अधिनियम में प्रावधान किया गया है कि भारत बड़ी मात्रा में अनाज की खरीद और इसे स्टोर करता रहेगा और अब तो वास्तव में अपनी जनसंख्या के एक बड़े वर्ग को इसका वितरण भी कर रहा है। दूसरी तरफ बाली में आयोजित विश्व व्यापार संगठन की बैठक में भारत ने इस पद्धति को 4 वर्ष में समाप्त करने पर सहमति व्यक्त की। यूपीए सरकार इस मुद्दे को विश्व व्यापार संगठन में अधिसूचित करने में क्यों विफल हुई या इसने कैसे सोच लिया था कि वह 4 वर्षों के बाद इस कार्यक्रम का आकार कम कर देगी या समाप्त कर देगी।

हमारे पास एक रणनीति है ! प्रधानमंत्री ने अपनी समझ से योजना आयोग को समाप्त करने का निर्णय लिया है और सुझाव देने को कहा है। इस तथ्य को ध्यान में रख कर कि समाज में अधिकतम संख्या किसानों की है, अतः यह तर्कसंगत होगा यदि नए बोर्ड या गठित किये जाने वाले प्राधिकरण में किसानों को शामिल किया जाए।

यदि हम अब भी इस दिशा में कदम नहीं उठाते हैं तो यह पुरानी भारतीय कहावत को ही दोहराएगा कि जनता का कोई कल्याण होने वाला नहीं है चाहे राज्य राम का हो या रावण का ?

